इच्छाएं बनाती हैं झंझटों जाल

हमारे सारे झंझटों का मूल कारण हमारी इच्छाएं ही है। निकृष्ट भोग ही का नाम काम है, कामना और इच्छाएं वैसे भी पर्यायवाची है। इच्छा के पूर्ण न होने से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। लोभ इच्छाओं के बाहुल्य या वेग का नाम है। किसी प्रिय वस्तु या व्यक्ति पर अधिकार बने रहने की इच्छा ही का नाम मोह है और मान-शान की इच्छा की अभिव्यक्ति अंहकार के रूप मे होती है । मेहनत करने से बचने की इच्छा या आराम-विश्राम करने की इच्छा ही आलस्य है । जिम्मेवारी से छुटे रहने की इच्छा ही अलबेलेपन के रुप में व्यक्त होती है। किसी दूसरे की उन्नति, प्रशंसा या प्रतिभा को देखकर वैसी या उससे अधिक प्राप्ति की इच्छा ही ईर्ष्या और द्वेष का रुप लेती है तथा पर-चिन्तन के रुप में सामने आती है। इन सभी प्रकार की नकारात्मक इच्छाओं ही का नाम व्यर्थ-चिन्तन है। इन इच्छाओं से थककर विश्रांति पाने के लिए मनुष्य जिस अवस्था में चले जाने की इच्छा करता है, उसी का नाम निद्रा है। फिर, निद्रा में जो स्वप्न आते हैं, वे तो दबी हुई इच्छाओं का प्राकट्य ही है। इस प्रकार, इच्छाओं में बंधा हुआ मनुष्य एक विकार से छूटकर दूसरे विकार के जाल में बंध जाता है। गोया उसका स्थानांतरण या अवस्था परिवर्तन मात्र होता रहता है, उसकी पदोन्नति या तरक्की नहीं होती है। वह इन इच्छाओं के चक्रव्यूह में एक बार घुस तो जाता है परन्त वीर अभिमन्यु की तरह इस दुर्योधन-दल के घेरे से बाहर निकलना नहीं जानता। इस सभी को सामने रखते हुए ठीक ही कहा गया है कि इच्छा मात्रं अविद्या। स्पष्ट है कि किसी विद्या विशेष से ही इनसे निवृति हो सकती है।

मनुष्य जब आध्यात्मिक विद्या लेता है तब सबसे पहले काम, वासना भोग या ऐन्द्रिय भोग से उसका छुटकारा होता है। वह ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके पतन के गर्त में ले जाने वाली, नरक के द्वार की ओर धकेलने वाली अविद्या मूलक 'काम' की इच्छा से मुक्त होता है। अन्यश्च, स्वयं को आत्मा समझने से तथा आत्मिक सुख प्राप्त करने से वह स्वयं को देह मानने की अविद्या से उत्पन्न होने वाले 'मोह' के जाल से भी छूटता है। साथ-साथ परमपिता परमात्मा से अब मन जुटने से जो आनंद प्राप्त होता है, उसके फलस्वरुप वह संतोष से सराबोर होकर लोभ और स्वार्थ की जंजीरों को तोड़ पाता है। अब जब उसकी इच्छायें ही 'नहीं रहतीं' या कम हो जाती हैं तो उसका क्रोध भी समाप्त हो जाता है या मंद पड़ जाता है। फिर मान-शान की इच्छा का स्थान जब प्रभु की प्रशंसा को मिल जाता है तो उसका अहंकार भी भाग जाता है । इस प्रकार उसके जीवन में व्यापक परिवर्तन होता है। इससे यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि जो मनुष्य आध्यात्मिक विद्या लेता है, उसका एक चिन्ह यह होगा कि उसकी इच्छायें कम हुई होंगी क्योंकि विद्या ही अविद्या को नष्ट करती है और अविद्या न रहने से इच्छायें भी नहीं रहनी चाहिएँ।

आत्मा का एक लक्षण - इच्छा

हम प्राय: यह तो कहते हैं कि मन, बुद्धि, संस्कार आदि आत्मा ही की चेतनता की विभिन्न अभिव्यक्तियों के नाम हैं परन्तु इस सारे वर्णन में 'इच्छा' का अलग से महत्वपूर्ण उल्लेख या वर्णन नहीं करते जबकि वास्तव में यह भी अविद्या रुपा है और मनोविकारों की जननी या तो धाय, पालने वाली माता या आया है। वास्तव में यह तो आत्मा का एक मुख्य चिन्ह, लक्षण या संकेतक है। जहाँ आत्मा है, चाहे वह मनुष्यात्मा हो चाहे कीट-पतंग के रुप में कोई आत्मा, उसमें इच्छा तो होगी ही, तभी तो वह कोई प्रयत्न, पुरुषार्थ, उद्यम, कार्य या कर्म करती होगी। अत: मन, बुद्धि और संस्कारों की शुद्धि के साथ-साथ इच्छा की शुद्धि करना भी आवश्यक है । जैसे कहा गया है कि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है' वैसे ही इच्छा सभी कर्मों की जननी है। 'इच्छा' आत्मा की अपूर्णता, अप्राप्ति या उसमें किसी सुख के अभाव का प्रतीक है । जैसे-जैसे आत्मा की अन्तर्निहित शक्तियों का उदय होता है या परमात्मा से युक्त होने के फलस्वरूप वह अपनी सर्वोत्कृष्ट स्थिति की ओर बढ़ती है, वैसे-वैसे उसकी इच्छायें कम भी होती हैं और शुद्ध भी। वे स्वार्थ-परक न होकर जन-सेवा, परोपकार, पर-हित या लोक-कल्याणार्थ हो जाती हैं।

आत्मानुभूति व परमात्मानुभूति की इच्छा

चूँकि अविद्या में पड़ी हुई, अपूर्णताओं से युक्त आत्मा इच्छाओं में जकड़ी हुई हैं और वे ही उसे विषयों की ओर प्रवृत करती तथा विकारों के गर्त में डालती हैं, इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उसे इन अशांतिकारी इच्छाओं से निवृत्त किया जाये। परन्तु इच्छा, जो कि चेतनता का एक लक्षण है, का पूर्णान्त तो किया नहीं जा सकता बल्कि इसका केवल मार्गान्तरीकरण या शुद्धिकरण ही हो सकता है अथवा लौकिक इच्छाओं को किसी श्रेष्ठ इच्छा में बदला जा सकता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो आत्मानुभूति और परमात्मानुभूति की इच्छा तथा मुक्ति और जीवनमुक्ति की इच्छायें ऐसी श्रेष्ठ इच्छायें हैं कि जिनके फलस्वरुप मनुष्य का मन वासनाओं तथा भोगों के प्रति प्रवृत्त होने की इच्छा से छूट जाता है और इसी का नाम वैराग्य, सद्विवेक और सत्संग है। इस इच्छा के बाद भी संसार में रहते हुए अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की इच्छायें तो बनी रहती हैं परन्तु उनसे काम, लोभ, मोह आदि निकल जाता है और मनुष्य साक्षी होकर आवश्यकताओं को पूरा करने का यत्न करता है। इसका एक परिणाम यह भी होता कि संसार से संघर्ष, वैमनस्य, वैर-विरोध आदि भी भाग जाते हैं और एक स्वस्थ व्यक्तित्व एंव स्वस्थ समाज का पुनर्निमाण होता है।

इच्छा, चेतनता का एक लक्षण है, का पूर्णान्त तो किया नहीं जा सकता वल्कि इसका केवल मार्गान्तरीकरण या शुद्धिकरण ही हो सकता है अर्थात लौकिक इच्छाओं को किसी श्रेष्ठ इच्छा में बदला जा सकता है।

इच्छाओं को कम किए बिना एकाग्रता असंभव

दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो मनुष्य की इच्छायें ही उसके मन की भटकन या परेशानी का कारण है। पहले तो मनुष्य उन्हें पूर्ण करने में ही रात-दिन लगा रहता है और परेशानियाँ मोल लेता है। फिर जब वे पूर्ण हो जाती हैं तो थोड़े समय के हर्षोल्लास के बाद उसे फीकापन या कमी महसूस होती है और यदि साधन बने भी रहें तो उन्हें बढाने की इच्छायें आ घेरती हैं। अत: फिर वह इच्छाओं की पूर्ति में लग जाता है। इस प्रकार उसकी आयु तो पूरी हो जाती है परन्तु इच्छायें पूरी नहीं होती। उनके पीछे वह तनाव में भी आ जाता है और फिर तनाव से मुक्त होने की इच्छा की पूर्ति करना चाहता है। इस तरह वह एक कुचक्र में फंस जाता है और इच्छा-पूर्ति-इच्छा-पूर्ति-इच्छा इस श्रृंखला की जंजीर बनाकर स्वयं ही उसमें कैद हो जाता है। इच्छाओं की बलि चढ़ाने की बजाए, वह अपने जीवन की आहुति इच्छाओं के अग्निकुंड में डाल देता है। जीवनभर वह इच्छाओं के हाथ में ही कुर्बानी का बकरा बना रहता है और मैं-मैं-मैं करते रहने पर भी संसार की बलिवेदी पर जन्म-जन्म गर्दन कटा लेता है। हाय रे इच्छा!

सादगी द्वारा ही स्वतंत्रता

अत: इच्छाओं की आग को भड़काकर उसमें स्वयं सती होने की बजाए सादगी को वरण करके सुहागिन बने रहना अच्छा है। अच्छा और इच्छा में केवल एक स्वर ('अ' ओर 'इ') ही का तो अन्तर है। परन्तु अच्छा वह बनता है जो इच्छाओं को कम करता है और अपने समय, शक्ति, श्वास तथा संकल्पों को कम खर्च करते हुए, सादगी और साधना का जीवन व्यतीत करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य दूसरों की कमाई पर जीये। ऐसा जीवन तो बेचारे रोगी का होता है। मनुष्य को स्वावलंबी तो होना ही चाहिए । ''दीर्घ सूत्री विनश्यति''—इस कहावत को सामने रखते हुए उसे अधिक फैलाव नहीं फैलाना चाहिए, मकड़ी के जाल की तरह स्वयं ही अपने को नहीं फंसा लेना चाहिए।

जीवन सादा ना हो तो साधना या तपस्या नहीं हो सकती। सांसारिक पदार्थों की लूट में लगे रहने वाला व्यक्ति राम नाम की लूट कैसे कर सकेगा। एक हाथ में दो लडडू कैसे पकड़ेगा? मन की म्यान में दो तलवारें कैसे डालेगा? वह समय और शक्तियों को भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति में लगाकर फिर आध्यात्मिक ऐश्वर्य में कहाँ से लगाएगा ा एक ही जीवन में वह दो जीवन कैसे जियेगा?

अत: मनुष्य को यह निर्णय कर लेना चाहिए कि क्या मुझे इच्छाओं का गुलाम बनना है। क्या उनका पसारा पसारकर, उसकी दलदल में धंस जाना है या, मुझे अब मन को प्रभु की लगन में मगन करके अथवा लवलीन होकर ईश्वरीय आनंद से मालामाल होना है। गंतव्य अथवा मंजिल का निर्णय करके और उस ओर जाने वाले मार्ग को जानकर ही मनुष्य को चलना चाहिए। इच्छाओं को कम एवं शुद्ध किये बिना मनुष्य का मन एकाग्र नहीं होगा और एकाग्रता के बिना वह ईश्वरीय स्मृति में स्थित नहीं कर पायेगा और स्थिति के बिना वह सिद्धि को नहीं पा सकेगा और सिद्धि तथा सफलता के बिना तो जीवन बेकार चला जायेगा। अत: योगी बनने के लिए तथा समाधि रुप सिद्धि प्राप्त करने के लिए इच्छाओं को समेटने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

कुरूक्षेत्र। गीता जयंती पर्व पर महामहिम राज्यपाल ए.ई. जगन्नाथ को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब्र.कु. सरोज।

जम्मू-शास्त्री नगर। विश्व शांति मेले का उद्घाटन करते हुए खेल मंत्री आर.एस. चिब। साथ हैं ब्र.कु. अरूण, ब्र.कु. निर्मल तथा अन्य।

कपूरथला। नवनिर्माण से पूर्व जमीन के शिलान्यास समारोह में नींव पत्थर रखते हुए विधायक नवतेज सिंह चीमा, ब्र.कु. कृष्णा, स्वामी आनंद ओमप्रकाश, शंभूनाथ शास्त्री, शिवसेना जिला प्रधान जगदीश कटारिया तथा अन्य।

करनाल सैक्टर-7। राजयोग मेडीटेशन सेन्टर भवन के शिलान्यास समारोह में मंच पर उपस्थित डॉ. डी.डी. शर्मा, ब्र.कु. अमीरचन्द, ब्र.कु. उत्तरा, भ्राता एस.पी. चौहान तथा ब्र.कु. प्रेम।

वासी-नई मुम्बई। अभिनेत्री गिरीजा, अभिनेत्री शितळ पाठक, अभिनेत्री कांली रेडकर, अँकर अनघा मोघे, अभिनेत्री अमृत सिंधू को ईश्वरीय संदेश देने के पश्चात् ब्र.कु. शीला।

ग्वालियर। महापौर श्रीमती समीक्षा गुप्ता, डीआरडीई के डायरेक्टर डॉ.एमपी कौशिक, पूर्व जिला न्यायाधीश बीएम गुप्ता, ब्र.कु.अवधेश।